CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

10 वर्ष (2016–2025)

## अध्यायवार

# हिन्दी साहित्य

## आईएएस मुख्य परीक्षा प्रश्नोत्तर रूप में

## हल प्रश्न–पत्र

## 10 वर्ष (2016-2025)

# अध्यायवार
# हिन्दी साहित्य

आईएएस मुख्य परीक्षा प्रश्नोत्तर रूप में

**हल प्रश्न-पत्र**

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के वैकल्पिक विषय के साथ-साथ राज्य लोक सेवा आयोगों की मुख्य परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी समान रूप से उपयोगी है।

**संपादकः** एन. एन. ओझा

**हलः** क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

# अनुक्रमणिका

## अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र 2016-2025

## प्रथम प्रश्न-पत्र

### खंड-क : हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास

1. अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप ........ 5
2. मध्यकाल में ब्रज और अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास ........ 12
3. सिद्ध-नाथ साहित्य, खुसरो, संत साहित्य, रहीम आदि कवियों और दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली का प्रारंभिक स्वरूप.. 22
4. उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली और नागरी लिपि का विकास ........ 34
5. हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का मानकीकरण ........ 40
6. स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विकास ........ 46
7. भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास.. 52
8. हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ........ 59
9. हिन्दी की प्रमुख बोलियां और उनका परस्पर संबंध.... 67
10. नागरी लिपि की प्रमुख विशेषताएं और उसके सुधार के प्रयास तथा मानक हिन्दी का स्वरूप ........ 75
11. मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना ........ 79

### खंड-ख : हिन्दी साहित्य का इतिहास

12. हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा ........ 91
13. हिन्दी साहित्य के प्रमुख काल ........ 95
    - आदि काल ........ 95
    - भक्ति काल ........ 99
    - रीति काल ........ 110
    - आधुनिक काल ........ 114
14. कथा साहित्य ........ 128
15. नाटक और रंगमंच ........ 143
16. आलोचना ........ 158
17. हिन्दी गद्य की अन्य विधाएं ........ 165

## द्वितीय प्रश्न-पत्र

### खंड-क : पद्य साहित्य

1. कबीर ........ 177
2. सूरदास ........ 184
3. तुलसीदास ........ 192
4. जायसी ........ 198
5. बिहारी ........ 204
6. मैथिलीशरण गुप्त ........ 209
7. जयशंकर प्रसाद ........ 215
8. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ........ 222
9. रामधारी सिंह दिनकर ........ 229

10. अज्ञेय ........ 235
11. मुक्तिबोध ........ 240
12. नागार्जुन ........ 247

## खंड-ख : गद्य साहित्य

13. भारतेन्दु ........ 253
14. मोहन राकेश ........ 262
15. रामचंद्र शुक्ल ........ 268
16. निबंध निलय ........ 278
17. प्रेमचंद ........ 282
18. जयशंकर प्रसाद ........ 291
19. यशपाल ........ 296
20. फणीश्वरनाथ रेणु ........ 302
21. मन्नू भंडारी ........ 309
22. एक दुनिया समानान्तर ........ 313

## सिविल सेवा मुख्य परीक्षा

# हिन्दी साहित्य

## (प्रथम प्रश्न-पत्र)

# खण्ड `क´ (हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

### अपभ्रंश, अवहट्ट और प्रारंभिक हिन्दी का व्याकरणिक तथा अनुप्रयुक्त स्वरूप

**प्र. अपभ्रंश और अवहट्ट की व्याकरणिक संरचना के मुख्य अंतर**
**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025 )**

उत्तर: अपभ्रंश और अवहट्ट की व्याकरणिक संरचना में मुख्य अंतर

| विशेषता | अपभ्रंश | अवहट्ट |
|---|---|---|
| **काल और प्रकृति** | प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की संक्रमणकालीन कड़ी। यह परिनिष्ठित रूप था। | यह अपभ्रंश का अंतिम/परवर्ती रूप है, जो सीधी पुरानी हिंदी या प्रारंभिक AIA की ओर झुका हुआ है। |
| **व्याकरणिक संरचना** | अपभ्रंश में व्याकरणिक संरचना अधिक जटिल थी, जिसमें लिंग, वचन, और कारक के विभिन्न रूप शामिल थे। | अवहट्ट में व्याकरणिक संरचना सरल हो गई, जिसमें केवल दो लिंग (स्त्रीलिंग और पुलिंग) और दो वचन (एकवचन और बहुवचन) रह गए। |
| **शब्दभंडार** | अपभ्रंश में विदेशी शब्दों की संख्या सीमित थी, जैसे अरबी, फारसी, और तुर्की के शब्द। | अवहट्ट में विदेशी शब्दों की संख्या बढ़ गई, विशेषकर मुस्लिम शासन के प्रभाव के कारण। |
| **लिंग और वचन** | अपभ्रंश में तीन लिंग (पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग) और तीन वचन (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) थे। | अवहट्ट में नपुंसकलिंग समाप्त हो गया और केवल दो वचन रह गए। |
| **कारक-चिह्नों** | संश्लेषणात्मकता अधिक थी। इसमें संस्कृत और प्राकृत के अवशेष के रूप में विभक्तियों (विभक्ति-प्रत्ययों) का प्रयोग होता था। | विश्लेषणात्मकता की ओर झुकाव बढ़ा। विभक्तियों का लोप होने लगा और उनके स्थान पर स्वतंत्र परसर्गों का प्रयोग शुरू हुआ। |
| **संज्ञा-रूप** | द्विवचन के रूप लगभग समाप्त हो गए थे, पर कुछ बहुवचन रूपों में विभक्ति-प्रत्ययों की स्पष्टता थी (जैसे पुरिसाहं – पुरुषों को)। | बहुवचन रूपों में प्रत्ययों का लोप अधिक हो गया और हिंदी के परसर्गों का प्रभाव बढ़ा। संज्ञा रूप अत्यधिक सरलीकृत हो गए। |
| **सर्वनाम-रूप** | सर्वनामों में अभी भी प्राकृत-प्रभावित रूपों की प्रधानता थी। | सर्वनामों में नई ध्वनियों और रूपों का विकास हुआ, जो आधुनिक हिंदी के अधिक करीब थे। |
| **क्रिया-रूप** | भूतकाल के रूपों में कृदंतों (participles) का प्रयोग प्रमुख था। क्रिया-रूप अपेक्षाकृत क्लिष्ट थे। | भूतकाल के क्रिया-रूपों में कृदंतों का प्रयोग स्थिर हुआ। क्रिया-रूपों में सहायक क्रियाओं का प्रयोग अधिक हुआ, जो हिंदी की ओर इशारा करता है। |
| **पदक्रम** | अपभ्रंश में पदक्रम निश्चित नहीं था। | अवहट्ट में पदक्रम अधिक निश्चित हो गया। |
| **स्वनिम विज्ञान** | न, ल, और स ध्वनियों की प्रधानता थी। अंतिम स्वर का लोप नहीं होता था। | अंतिम स्वरों का लोप अधिक हुआ (उदा. करइ से कर)। द्वित्व व्यंजन कम हो गए। |
| **साहित्यिक उदाहरण** | "किज्जिय", "करिज्जिय" जैसे रूप मिलते हैं। | "कीजै", "कीजिये" जैसे रूप मिलते हैं। |
| **प्रमुख उदाहरण** | हेमचंद्र का व्याकरण, सिद्ध साहित्य (सरहपा)। "भनहिं विद्यापति, कहै कबीर सुनौ भाई साधी।" | विद्यापति की कीर्तिलता, अब्दुर्रहमान का संदेश-रासक। "बंदी गुरुपद पदुम परागा।" |

**प्र. अपभ्रंश और अवहट्ट का तुलनात्मक मूल्यांकन ( टिप्पणी )।**
**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024 )**

**उत्तर:** अपभ्रंश और अवहट्ट का तुलनात्मक अंतर मूल रूप से उसके भाषिक तत्व, ध्वनि इकाई और व्याकरणिक कोटियों में परिवर्तन के आधार पर किया गया है।

# सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
# हिन्दी साहित्य
## (प्रथम प्रश्न-पत्र)

## खण्ड 'ख' (हिन्दी साहित्य का इतिहास)

### हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा

**प्र. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की साहित्येतिहास-दृष्टि के प्रमुख बिन्दुओं को स्पष्ट कीजिए।**
**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024 )**

**उत्तरः** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखते हुए हिन्दी भाषा के इतिहास पर भी पर्याप्त विचार करते हैं। विदित हो कि, किसी भी साहित्य के इतिहास में उस भाषा का इतिहास भी छिपा होता है और भाषा का इतिहास सामाजिक जीवन की संवेदनशीलता, चिन्तनशीलता, सृजनशीलता और प्रगति का इतिहास होता है।

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' से साहित्येतिहास लेखन की नींव इतनी मजबूत रख दी कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को छोड़कर शेष इतिहासकार सिर्फ उनका अनुकरण करते ही दिखाई देते हैं। शुक्ल जी के इतिहास का अध्ययन जैसे-जैसे गहन से गहनतर होता गया, नई-नई परतें उद्घाटित होती चली गईं।
- आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में 'हिन्दी साहित्य का विकास' लिखा, जिसे बाद में परिवर्द्धित व परिमार्जित कर सन् 1929 में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम से प्रकाशित किया। इसे हिन्दी का प्रथम व्यवस्थित और वैज्ञानिक साहित्येतिहास होने का गौरव प्राप्त है।
- आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी हिन्दी भाषा के स्वरूप, भाषा और इतिहास आदि विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। वे हिन्दी साहित्य का इतिहास में हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के आपसी सम्बन्धों का बराबर ध्यान रखते हैं।
- इसलिए 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' साहित्येतिहास के साथ-साथ भाषा का भी इतिहास है। एक ऐसी भाषा का इतिहास, जिसे 'देश भाषा काल' कहते हैं।
- हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ का सवाल भी भाषा से जुड़ जाता है। यह समस्या भाषा के इतिहास से जुड़ी हुई है। शुक्ल जी के अनुसार प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है।
- इसे वे कभी 'प्राकृताभास हिन्दी' तो कभी 'पुरानी हिन्दी' कहते हैं। दूसरी तरफ वे 'देशभाषा काव्य' से हिन्दी का प्रारम्भ मानते हैं तथा अपभ्रंश को 'पुरानी हिन्दी' कहने के बावजूद उसे हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि में ही रखते हैं।
- कहा जा सकता है कि अपभ्रंश को लेकर आचार्य शुक्ल के यहां एक अन्तर्विरोध है; इन तमाम अन्तर्विरोधों के बावजूद अपभ्रंश की वास्तविक स्थिति और स्वतन्त्र बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी के अस्तित्व को वे पहचान सके हैं, यह उनकी इतिहास दृष्टि की बड़ी उपलब्धि है।
- साहित्य, इसका इतिहास और समाज से इनके सम्बन्धों से सम्बद्ध अब तक की अवधारणाओं, व्याख्याओं पर रामचन्द्र शुक्ल की स्थापना सार्थकता के अधिक करीब है।
- हिन्दी साहित्य का इतिहास की भूमिका में वे लिखते हैं- जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित ही जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।

**निष्कर्ष**

वस्तुतः साहित्येतिहासकारों की उत्तरमध्यकाल संबंधी दृष्टि उसके रीति पक्ष पर ही अधिक केंद्रित है। साहित्येतिहास लेखन में केवल साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों एवं कवियों पर ही बल नहीं दिया जाता, बल्कि गौण कवियों एवं प्रवृत्तियों को दिखाना भी साहित्येतिहासकार का लक्ष्य होता है। हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल की आलोचना उसके रीति पक्ष को लेकर अधिक की गई है जबकि उस काल के साहित्य में अन्य प्रवृत्तियां भी मौजूद हैं। अतः आज जब हमारे पास साहित्येतिहास को देखने की अनेक दृष्टियां और सामग्री मौजूद हैं तो इस काल के साहित्य पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

**प्र. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-पूर्व हिन्दी साहित्य इतिहास का लेखन।** **( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2023 )**

**उत्तरः** हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा का वास्तविक आरम्भ 19वीं शताब्दी से माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित इतिहास लिखकर एक नये युग का समारंभ किया।

- रामचंद्र शुक्ल से पूर्व जिन्होंने हिन्दी साहित्य लेखन का प्रयास किया, उनमें फ्रेंच विद्वान 'गार्सा-द-तासी' का नाम अग्रणी है, उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की शुरुआत की।
- इनके द्वारा 'इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' नामक ग्रन्थ की रचना की गई, जिसका प्रकाशन दो भागों में किया गया।

आचार्य शुक्ल जी के साथ बाबुराम सक्सेना, रामकुमार वर्मा, शिवनन्दन ठाकुर आदि भी हैं। विद्यापति को केवल भक्त भी माना गया है जिसमें ग्रियर्सन के साथ नगेन्द्रनाथ जनाद्रन मिश्र, श्याम सुन्दर दास इत्यादि शामिल है। विद्यापति साहित्य के अध्येताओं शिवप्रसाद सिंह और रामवृक्ष बेनीपुरी विद्यापति को किसी एक साचें में रखने की बजाये उनको समग्रता में देखने के आग्रही है और ऐसा उनके उपरोक्त उद्धरणों से भी स्पष्ट हो जाता हैं।

**प्र. विद्यापति की कविताओं में विद्यमान भक्ति-भावना**

**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2016 )**

**उत्तर:** विद्यापति की कीर्ति का मुख्य आधार पदावली है। विद्यापति के पदों के संदर्भ में प्रो. मैनेजर पांडेय के कथन के सहारे ही बातें खुलती है कि लौकिक प्रेम ही ईश्वरोन्मुख होकर भक्ति में परिणत हो जाता है। लौकिक प्रेम भी जोड़ने का काम करता है और ईश्वरीय प्रेम भी। एकात्म्य की जो स्थिति भक्ति में दिखाई देती है और विद्यापति जिसे आत्मा परमात्मा के मिलने रूप में कहते हैं- 'तोहे जनमि पुनि तोहे समाओब सागर लहरि समाना'। यह स्थिति लौकिक प्रेम में कैसे फलित होती है यह देखने के लिए कृष्ण के विरह में नायिका द्वारा गाया गया वह गीत है- 'अनुखन माधव सुमरइत राधा भेल मधाई।' अर्थात सुध-बुध खोकर प्रेम-दीवानी होने वाली राधा की जो व्याकुलता यहां है, भक्ति में यही व्याकुलता और विह्वलता भक्तों की होती है।

महाकवि विद्यापति की कविता में सर्वत्र रसधारा प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है। भक्ति और शृंगार के जो मानदंड आज के प्रवक्ताओं की राय में व्याप्त है, उस आधार पर विद्यापति के काव्य-संसार को बांटे तो राधा कृष्ण विषयक ज्यादातर गीत शृंगारिक हैं और जो भक्ति गीत है उनमें प्रमुख है- शिव स्तुति, गंगा स्तुति, कालीवंदना, कृष्ण-प्रार्थना आदि। उल्लेखनीय है कि स्त्री-पुरुष प्रेम विषयक जो भी शृंगारिक पद विद्यापति ने लिखे वे अपने जीवन के अंतिम तीस-बत्तीस वर्षों पूर्व ही। शृंगार और भक्ति को परस्पर विरोधी मानने वाली धारणा से मुक्त होने के लिए डॉ. शिव प्रसाद सिंह का मत गौरतलब है- ''प्रत्येक महाकवि अपनी परंपरा का परिणाम होता है।

यह सच है कि जीवंत कवि पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नई भावधारा की सृष्टि करता है और पुराने प्रथा-प्रतीकों की वर्णनों की शृंखला को तोड़कर नए उपमान-मुहावरे, प्रतीकों का निर्माण करता है किन्तु कोई अपनी परंपरा से एकदम विच्छिन्न कभी नहीं हो सकता। विद्यापति के काव्य को समझने के लिए तत्कालीन काव्य की मर्यादाओं को, नियमावलियों को तथा कविजनोचित उस समय की परम्परा को समझना होगा जो उन्हें विरासत में मिली थी।

यह दीगर बात है कि भक्तिकाल का समय-निर्धारण साहित्येतिहास में जब से होता है उसके चार-पांच वर्ष बाद विद्यापति ने शृंगारिक गीतों की रचना छोड़ दी। ऐसे सच यह भी है कि विद्यापति के मैथिली में लिखे राधा-कृष्ण प्रेम विषयक गीतों को कई कृष्ण भक्त कवि भक्तिगीत के रूप में गाते हैं। विद्यापति का एक भक्तिपरक गीत है-

**जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि**
**पशु-पति भामिनी माया**

विद्यापति अपने भक्तिपरक गीतों में विनीत हो जाते हैं और पूर्व में किए गए रमण और आराम को निरर्थक बता देते हैं-

**आध जनम हम निन्दे गमाओल, जरा शिशु कत दिन गेला**
**निधुवन रमणी रसरंगे मातल, तोहे भजन कोन बेला।''**

# हिन्दी साहित्य के प्रमुख काल-भक्ति काल

**प्र. कबीर की लोकोन्मुखता**

**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025 )**

**उत्तर:** कबीर की लोकोन्मुखता (जनसामान्य या लोक की ओर झुकाव) उनकी कविता और उनके दर्शन की केंद्रीय विशेषता है। उन्होंने अपनी वाणी और साधना के माध्यम से धार्मिक आडंबर, सामाजिक असमानता और रूढ़िवादिता पर प्रहार करते हुए आम जनता के जीवन, भाषा और दुखों को सीधे संबोधित किया।

**कबीर की लोकोन्मुखता के प्रमुख आयाम**

कबीर की लोकोन्मुखता निम्नलिखित तत्वों से स्पष्ट होती है:

1. **लोकभाषा का प्रयोग**
   - **सधुक्कड़ी भाषा:** कबीर ने संस्कृत या फारसी जैसी शास्त्रीय भाषाओं का प्रयोग न करके लोकभाषा (सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी) को अपनाया। इस भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, और खड़ी बोली के शब्द मिश्रित थे, जिससे उनकी वाणी बिना किसी माध्यम के जन-जन तक पहुँची।
   - **सरल दृष्टांत:** उन्होंने अपनी बात सिद्ध करने के लिए लोक-जीवन से जुड़े सरल उपमानों और प्रतीकों (जैसे चक्की, दीपक, जुलाहा, कपड़ा बुनना, पानी) का प्रयोग किया, जिससे अनपढ़ जनता भी उनके गूढ़ रहस्यात्मक सिद्धांतों को आसानी से समझ सकी।
2. **सामाजिक समता और सुधार**
   - **जातिवाद का खंडन:** कबीर ने समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और छुआछूत पर तीव्र प्रहार किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं। उनका यह रुख सामाजिक रूप से शोषित और निम्न माने जाने वाले वर्गों को आत्म-सम्मान प्रदान करने वाला था।

**सोदाहरण: "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।"**

- **धार्मिक आडंबरों का विरोध:** उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के कर्मकांड, व्रत, मूर्तिपूजा, नमाज, रोजा आदि बाह्य आडंबरों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने आंतरिक शुद्धि और सरल प्रेम-भक्ति पर बल दिया, जो आम लोगों के लिए आसानी से ग्राह्य थी।

3. **निर्गुण भक्ति का लोकतांत्रिक स्वरूप**
   - **सुगम साधना:** कबीर ने निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। इस मार्ग में किसी बाहरी पुरोहित, मंदिर या विशेष अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं थी। यह मार्ग गरीब और साधनहीन व्यक्ति के लिए भी उतना ही सुलभ था जितना कि धनवान के लिए।
   - **अनुभव की प्रधानता:** उन्होंने धार्मिक ज्ञान के लिए शास्त्रों के अध्ययन के बजाय व्यक्तिगत अनुभव को महत्व दिया। यह दृष्टिकोण लोक-बुद्धि और अनुभव को सम्मान देता है।
4. **विद्रोही स्वर और निडरता**
   - **जन-चेतना का निर्माण:** कबीर का फक्कड़पन और निडरता उनकी लोकोन्मुखता का प्रमाण है। उन्होंने शक्तिशाली वर्गों (पंडितों और मुल्लाओं) के सामने खड़े होकर अपनी बात कही। इस विद्रोही तेवर ने आम जनता में जागरूकता और अन्याय

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा

# हिन्दी साहित्य

(द्वितीय प्रश्न-पत्र)

## खण्ड 'क' (पद्य साहित्य)

### कबीर

**प्र. 'कबीर ग्रन्थावली' के आधार पर कबीर के आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।**

**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025 )**

**उत्तरः** कबीर ग्रंथावली के आधार पर कबीर का आध्यात्मिक दृष्टिकोण एकेश्वरवादी, निर्गुणवादी, और रहस्यवादी है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा और लोकानुभव का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। उनका अध्यात्म किसी शास्त्र या कर्मकांड पर नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभूति, प्रेम और सहज साधना पर टिका है।

**1. निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा**

- कबीर का अध्यात्म निर्गुण ब्रह्म की उपासना से शुरू होता है।
- **निराकार और नामरहितः** कबीर का ईश्वर किसी मंदिर या मूर्ति में नहीं, बल्कि हृदय में व्याप्त है। वह अविनाशी, अरूप, अनाम, और अगोचर है। उन्होंने सगुण अवतारों की पूजा और कर्मकांड का खंडन किया।

**"दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,**
**राम नाम का मरम है आना।"**
**( दशरथ पुत्र राम का नहीं,**
**बल्कि परम ब्रह्म का नाम महत्वपूर्ण है।)**

- **अद्वैत भावनाः** उनका ब्रह्म जगत के कण-कण में व्याप्त है। वे मानते हैं कि आत्मा (जीव) और परमात्मा (ब्रह्म) में वस्तुतः कोई भेद नहीं है, यह भेद केवल माया के कारण उत्पन्न हुआ है।

**2. प्रेम और विरह का महत्व**

- कबीर की आध्यात्मिकता में प्रेम को ही परमात्मा तक पहुँचने का एकमात्र मार्ग माना गया है।
- **प्रेम की पीरः** वे आत्मा (विरहिणी) और परमात्मा (प्रियतम) के संबंध को पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका के रूप में चित्रित करते हैं। इस विरह को उन्होंने साधना का सबसे महत्वपूर्ण अंग माना, क्योंकि विरह की पीड़ा ही भक्त को ईश्वर से जोड़े रखती है।

**"बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।**
**राम बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ॥"**

- **आत्म-समर्पणः** प्रेम ही वह शक्ति है जो साधक के अहंकार (हुँमे) को समाप्त करती है और उसे पूर्ण रूप से ईश्वर के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा देती है।

**3. गुरु की महत्ता और सहज साधना**

- कबीर के अध्यात्म में गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया गया है, और मोक्ष का मार्ग अत्यंत सरल बताया गया है।
- **ज्ञानदाता गुरुः** गुरु ही वह कड़ी है जो अज्ञानी जीव को माया के बंधनों से मुक्त करके ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है। गुरु की कृपा से ही ज्ञान का प्रकाश मिलता है।
- **सहज योगः** उन्होंने हठयोग की कठिन साधनाओं को निरर्थक माना और सहज समाधि या सहज योग पर बल दिया। यह आंतरिक साधना है, जिसमें व्यक्ति न तो सांसारिक कर्म छोड़ता है और न ही बाहरी अनुष्ठान करता है, बल्कि स्वाभाविक रूप से जीवन जीते हुए ही ईश्वर का स्मरण करता है।

**4. रहस्यवाद और उलटबाँसियाँ**

- कबीर के आध्यात्मिक अनुभव सीधे और व्यक्तिगत थे, जिन्हें व्यक्त करने के लिए उन्होंने रहस्यवादी शैली अपनाई।
- **अनुभूति की गहनताः** उन्होंने ईश्वर से अपने व्यक्तिगत मिलन की अनुभूति को ऐसी भाषा में व्यक्त किया जो आम लोगों के लिए गूढ़ थी। यह रहस्यवाद उनकी साधना की गहनता को दर्शाता है।
- **उलटबाँसियाँः** उन्होंने धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करने और अपने योगपरक अनुभवों को व्यक्त करने के लिए उलटबाँसियों (विरोधाभासी कथन) का प्रयोग किया (उदा. बिना बीज के पेड़ उगना, उल्टे कुएँ में पानी भरना)।

निष्कर्ष रूप में, कबीर का आध्यात्मिक दृष्टिकोण बाहरी आडंबरों से मुक्त, प्रेम-प्रधान, और लोक-जीवन के अनुकूल था। उन्होंने भारतीय समाज को एक ऐसा धार्मिक मार्ग दिखाया, जहाँ जाति, वर्ग, और शास्त्र से अधिक व्यक्ति का हृदय और उसकी अनुभूति मायने रखती है।

**प्र. 'कबीर वाणी के डिक्टेटर हैं' - इस अभिमत के परिप्रेक्ष्य में कबीर की भाषा पर विचार कीजिए।**

**( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024 )**

**उत्तरः** हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीरदास जितने लोकप्रिय हैं, भाषा प्रयोग के कारण उतने ही विवादास्पद भी। उनकी भाषा प्रयुक्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। स्वयं कबीर ने अपनी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है-

**हम पूरब के पूरबिया जात न पूछे कोय।**
**हमको तो सोई लखै धुर पूरब का होय॥**

- कबीर की भाषा जनता के टकसाल से निकली है, उसमें व्याकरण और शास्त्र का आग्रह नहीं था और शायद इसीलिए कबीर अपनी भाषा के साथ हर तरह की मनमानी कर लेते थे।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा

# हिन्दी साहित्य

(द्वितीय प्रश्न-पत्र)

## खण्ड `ख' (गद्य साहित्य)

### भारतेन्दु

**प्र. भारत दुर्दशा अतीत गौरव की चमकदार स्मृति है; आँसू भरा वर्तमान है और भविष्य निर्माण की प्रेरणा है।" - इस कथन की समीक्षा कीजिए। ( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025 )**

**उत्तर:** यह कथन भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'भारत दुर्दशा' (1880) के मूल भाव और संरचना को पूर्णतः अभिव्यक्त करता है। यह नाटक केवल तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं है, बल्कि यह अतीत, वर्तमान और भविष्य की चेतना को एक साथ जोड़कर राष्ट्रीय जागरण का कार्य करता है।

**1. अतीत गौरव की चमकदार स्मृति**

- नाटक अपनी शुरुआत और बीच-बीच के संवादों में भारत के स्वर्णिम अतीत का स्मरण कराता है। यह गौरव गान वर्तमान की दुर्दशा को और भी अधिक मार्मिक बनाता है:
- **ऐतिहासिक संदर्भ:** नाटक भारत को कभी ज्ञान, धन, और सभ्यता का शिखर मानता है। यह अतीत की समृद्धि और सांस्कृतिक उच्चता को याद दिलाता है ताकि दर्शक अपनी वर्तमान स्थिति पर शर्मिंदा हों।
- **आत्म-सम्मान का आधार:** यह स्मृति भारतीयों में आत्म-सम्मान और राष्ट्रीय गौरव की भावना जगाने का प्रयास है। यह बताता है कि हम एक महान परंपरा के उत्तराधिकारी हैं, और हमें अपनी वर्तमान दासता को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

**2. आँसू भरा वर्तमान**

- नाटक का केंद्रीय विषय तत्कालीन भारत की दुर्दशा है, जिसे भारतेंदु ने विभिन्न प्रतीकात्मक पात्रों (जैसे 'भारत दुर्दैव', 'रोग', 'आलस्य') के माध्यम से चित्रित किया है।
- **आर्थिक और सामाजिक पतन:** नाटक गरीबी, महामारी, अंधविश्वास, आपसी फूट, और शिक्षा के अभाव को वर्तमान दुर्दशा का कारण बताता है। 'भारत दुर्दैव' नामक पात्र इन सभी समस्याओं का प्रतीक है, जो भारत को पतित करने पर तुला हुआ है।
- **त्रासदी और निराशा:** नाटक में निराशा और दुख का भाव इतना गहरा है कि कई पात्रों को अंततः रोते हुए या पलायन करते हुए दिखाया गया है। 'भारत दुर्दैव' द्वारा फैलाया गया 'अंधकार' (अज्ञान) और 'रोग' (महामारी) तत्कालीन ब्रिटिश शासन और सामाजिक जड़ता की कठोर वास्तविकता को दर्शाता है।

**3. भविष्य निर्माण की प्रेरणा**

- नाटक का उद्देश्य केवल दुख व्यक्त करना नहीं है, बल्कि वर्तमान दुर्दशा के कारणों को पहचानकर भविष्य के लिए क्रियाशील होना है।
- **कारणों की पहचान:** नाटक स्पष्ट करता है कि भारत की दुर्दशा के लिए केवल बाहरी शक्तियाँ (अंग्रेजी राज) ही नहीं, बल्कि आंतरिक बुराइयाँ (आलस्य, फूट, अज्ञान) भी जिम्मेदार हैं। इस पहचान के बाद ही सुधार संभव है।
- **जागरण का आह्वान:** नाटक के पात्र, विशेषकर 'सत्य' और 'संतोष', अंततः लोगों को जागरूक होने, संगठित होने, और शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं। "रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई" जैसे आह्वान के माध्यम से भारतेंदु ने लोगों को क्रियाशील होने और राष्ट्रीय उत्थान के लिए संघर्ष करने का संदेश दिया।

**समीक्षा:** 'भारत दुर्दशा' एक सफल रूपक (Allegory) है जो नवजागरण की भावना को दर्शाता है। यह नाटक इतिहास और वर्तमान के द्वंद्व को दिखाकर एक आशावादी भविष्य की नींव रखता है। यह केवल एक नाटक नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की उद्घोषणा है, जहाँ दुख को कर्म की प्रेरणा में बदला जाता है।

**प्र. 'भारत-दुर्दशा' की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए। ( सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024 )**

**उत्तर:** 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक सामाजिक, धार्मिक आन्दोलनों को मुख्य रूप से नवजागरण सुधारवादी आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इन आन्दोलनों ने सामाजिक और धार्मिक कुप्रथाओं पर जमकर चोट की, इन्होंने साम्यवादी व्यवस्था में फैली बुराईयां वो चाहे जाति-पाति को हो, हुआ-छूत हों या फिर धार्मिक अंधविश्वासों की, सबकी जमकर आलोचना की।

- इन आन्दोलनों के द्वारा सामाजिक, धार्मिक जो भी सुधार हुआ वह राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देने में काफी सहायक हुआ। भारतेन्दु जी ने धार्मिक संकीर्णता को स्वीकार नहीं किया, नहीं वे वेदों के माध्यम से भारत की प्रगति या विकास करना चाहते थे। उनका मानना था कि वेदों-उपनिषदों को शिक्षा का जरूरी भाग बना दिया जाए, अन्य विषयों की भाँति इनको भी पढ़ाया जाए, क्योंकि तभी मनुष्य का चतुर्मुखी विकास होगा।
- भारतेन्दु जी ने ब्रिटिश राज्य व्यवस्था पर सीधे प्रहार नहीं किया किन्तु वे अपनी बातों को कहने में कहीं चूकते भी नहीं थे।